आर्यसमाज तथा अन्य समाज सुधारकों की भीड़ में खो गया हिन्दू समाज

आरेख 1 दयानन्द सरस्वती [1]

मानोज रखित

विषयवस्तु

एक स्पष्टीकरण 5

आर्यसमाज 5

जैन समुदाय 25

सिक्ख समुदाय 27

समापन 28

परिशिष्ट 29

- हिन्दुओं के संगठित होने का प्रश्न 29
- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 31
- 22 सितम्बर 2008 33

संदर्भ सूची 36

- सर्वोच्च न्यायालय एवं बंबई, कलकत्ता, मद्रास के उच्च न्यायालयों में दायर किए गए मुकदमों के संदर्भ 36

संदर्भ तथा टिप्पणियाँ 38

चित्र सूची

आरेख 1 दयानन्द सरस्वती 1
आरेख 2 दयानन्द 13
आरेख 3 क्वीन्स कॉलेज वाराणसी 14
आरेख 4 बनारस द क्वीन्स कॉलेज पोस्टकार्ड ब्रिटिश पाउन्ड 0.50 रॉयल मेल फ़र्स्ट क्लास 14
आरेख 5 राजा राम मोहन रॉय ब्राह्मोसमाज के संस्थापक 17
आरेख 6 केशवचन्द्र सेन 19
आरेख 8 रामकृष्ण परमहंस देव 19
आरेख 7 श्रीरामकृष्ण परमहंस केशवचंद्र सेन के घर पर समाधि अवस्था में - उनके भतीजे हृदय ने उनके शरीर को सहारा दिया हुआ है तथा चारों ओर ब्राह्मोसमाज के सदस्य बैठे हुए 20

प्रार्थना

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु में देव शुभकार्येषु सर्वदा।।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर् देवैस्सदावन्दिता,
सा माम् पातु सरस्वती भगवती निश्शेषजाड्यापहा।।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

समर्पण

कायेन वाचा मनसेन्द्रिऐवा बुध्यात्मना वा प्रकृते स्वभावात।
करोमि यद् यद् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि।।

मानोज रखित

maanojrakhit@gmail.com
http://www.maanojrakhit.com
http://www.scribd.com/maanojrakhit

यदि आप जन-जागरण का संकल्प लेकर इस पुस्तिका को बँटवाना चाहें तो निःसंकोच इसकी प्रतियाँ करवा लें अथवा छपवा लें पर यह ध्यान अवश्य रखें कि कोई परिवर्तन करना आवश्यक जान पड़े तो कृपया मेरी अग्रिम अनुमति लिखित रूप में अवश्य ले लें।

एक स्पष्टीकरण

प्रत्येक विषय के दो पहलू हुआ करते हैं - एक जो प्रचलित हो जाता है और दूसरा जो गर्द की पर्त के नीचे छुपा होता है। मुझसे आप उन बातों की आशा न करें जो आप सदा से सुनते आये हों। यदि मैं ऐसा करूँ तो लोगों का प्रिय बनूँगा जो आज रहेगी और कल मिट जायेगी। यदि मैं ऐसा करूँ तो धन भी कमाऊँगा जिसे लेकर अपने साथ मैं ऊपर तो नहीं जा सकता। यदि मैं अप्रिय सत्य को सामने लाऊँ तो ग्राहक सीमित होंगे, प्रेम कम वैमनस्यता अधिक मिलेगी - संभवतः ऐसा कुछ भी हासिल न हो जिसे सुख एवं समृ द्धि के तराजू पर तौला जा सके। सुख की चाहत तो सभी को होती है पर जो जीवन का एकमात्र अतुलनीय सुख पा चुका हो उसके लिए बाकी सभी प्रकार के सुखों का महत्व ही क्या रह जाता है। मुझसे आशा उन्हीं चीजों की कर सकते हैं जो सरे- आम बिकते नहीं। मेरे पास देने को बस यही है।

आर्यसमाज

अल्पसंख्यक आर्यसमाजी अपने- आपको पहले हिंदू और बाद में आर्यसमाजी मानते हैं। बाकी आर्यसमाजी अपने-आपको "हिंदू नहीं" बल्कि केवल आर्यसमाजी मानते हैं। अल्पसंख्यक होने के कारण , जो आर्यसमाजी अपने-आपको पहले हिंदू मानते हैं, वे इस बात की खुलेआम घोषणा अपने लोगों में नहीं करते। कारण, ऐसा करने से कुछ हासिल न होगा, बल्कि वे अपनों में ही परायों जैसे जीयेंगे।

यही कारण है कि आर्यसमाजी हिंदुओं पर यह जाहिर नहीं होने देते कि वे हिंदुओं को किस दृष्टि से देखते हैं। वे जानते हैं कि इस बात की

खुलेआम घोषणा करने से आर्यसमाज को बड़ी हानि होगी। आज हिंदूसमाज में उनकी जो पहचान है, वह मिट जायेगी।

यह एक आँखो देखी सत्य घटना है। रविवार 29 अप्रैल 2007 समय दोपहर बारह-साढ़े-बारह के बीच। स्थान आर्यसमाज , वाशी, नवी मुम्बई। अवसर वाशी आर्यसमाज रजत- जयन्ती शास्त्रार्थ समारोह। मंच पर बैठे व्यक्तियों में एक महिला , बाकी सभी पुरुष। महिला की पदवी शास्त्री। आर्यसमाज में एक विदुषी की मान्यता प्राप्त होने के कारण उन्हें एक अन्य प्रांत से आमंत्रित किया गया था। स्वाभाविक था कि स्थानीय आर्यसमाजियों को उनसे दिग्दर्शन की अपेक्षा थी। उनका भाषण छोटा , सधा हुआ, प्रभावी था।

अनेक वर्षों पहले आर्यसमाज ने उच्चन्यायालय में दावा किया था कि आर्यसमाज एक हिन्दू संगठन नहीं है। आर्यसमाज के एक उच्चस्तरीय अधिकारी ने मुझसे इस बात की पुष्टि भी की थी। पर आज मैंने एक नई बात जानी। महिला शास्त्री ने मेरे समक्ष सारी सभा को यह भी बताया कि आर्यसमाज का सबसे बड़ा दुश्मन हिन्दू है।

जब (1) आर्यसमाज का एक विशिष्ट वक्ता , आर्यसमाज की एक विशिष्ट सभा में , आर्यसमाज की एक स्वीकृत- सोच को श्रोतागणों के सामने प्रस्तुत करता है ; और (2) उस सभा में उपस्थित आर्यसमाज के वरिष्ठजन, उस बैठक की समाप्ति तक, आर्यसमाज की उस सोच का खण्डन नहीं करते हैं , बल्कि सभा की समाप्ति के पहले उस वक्ता को , उसी सभा में , सभी श्रोतागणों के सामने , सम्मानित करते हैं ; एवं (3) श्रोतागणों में से कुछ श्रोता उठकर मंचपर आते हैं और केवल उसी एक वक्ता के साथ लगभग लिपटकर फोटो खिंचवाकर , अपनी आत्मीयता का प्रदर्शन करते हैं ; तो यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि

आर्यसमाज की उस सोच को , आर्यसमाज में उस सभा की पूर्ण सहमति प्राप्त थी।

हिन्दुओं को बचपन से स्कूल की पाठ्यपुस्तकों के द्वारा यही बताया जाता रहा है कि आर्यसमाज ने हिंदूसमाज का सुधार किया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि आर्यसमाज , जो हिंदू को अपना पहला शत्रु मानता है , वह हिंदूसमाज का सुधार कैसे कर सकता है ? किसी में सुधार लाने के लिए पहले उसके प्रति मन में प्रेमभाव होना आवश्यक है। शत्रुता का भाव मन में छुपाकर आप उसका बुरा ही कर सकते हैं , अच्छा कभी नहीं। आगे चलकर इस बात का विश्लेषण करेंगे कि आर्यसमाज ने वस्तुतः हिन्दूसमाज का भला किया या बुरा किया?

"राम नाम जपना, पराया माल अपना" - आजकल तो यह जुमला अधिक सुनाई नहीं देता है पर जब मैं स्कूल में था उन दिनों इसका बड़ा बोल-बाला था। इस जुमले ने न- जाने कितने बालक-बालिकाओं के मन में ब्राह्मणों के विरुद्ध दुर्भावना का बीज बोया था। समाज में कुछ ऐसी छवि आँकी गई थी जैसे ब्राह्मण मुँह से तो राम- नाम जपते दिखाई देते हैं पर उनकी नज़र दूसरों के माल पर रहती है जिसे वे हड़पने की फ़िराक में होते हैं। यह ख्याल कभी भी मेरे मन में न आया कि आर्यसमाज का इस षड़यंत्र में कोई हाथ हो सकता है। शास्त्राणी ने अपने श्रोताओं को बड़े ही गर्व से बताया कि उस तुकबंदी को रचने का श्रेय आर्यसमाज को ही जाता है।

ब्राह्मण-विद्वेष का वह बीज जो सदियों पहले ईसाई धर्माधिकारियों ने बोया था, उसी को सींच कर, सँवार कर आर्यसमाज ने इस स्थिति तक पहुँचा दिया है कि आज आम हिन्दू के मन में ब्राह्मण के प्रति उलाहना की भावना बहुत प्रखर हो चुकी है। हिन्दूसमाज से अपने आपको अलग

मानते हुए, पर अपना हिन्दू नाम न छोड़ते हुए , हिन्दुओं को इस भ्रांति में रखकर कि वे हिन्दुओं के शुभचिंतक हैं, हिन्दुओं का "अपना" बनकर, हिन्दुओं में हिन्दुओं के प्रति वैमनस्य का बीज बोते हुए , हिन्दुओं में हिन्दू आस्थाओं के प्रति शंका का बीजारोपण करते हुए , हिन्दुओं को अपनी जड़ों से काटते हुए , ये अपने आपको हिन्दू- हितैषी कहने वाले , हिन्दुओं के साथ आँख-मिचौली का खेल खेलते रहे, और हम उन्हें अपना मानते हुए उनपर विश्वास करते रहे।

आर्यसमाजी अपनी पहचान हिंदुओं से अलग रखना चाहते थे। इसलिए वे अपने-आपको "वैदिक" और हिन्दुओं को "पौराणिक" कहते थे। सम्भवतः वेदों पर अपना स्वामित्व स्थापित करना चाहते थे। एक वक्ता ने हम श्रोताओं को बताया कि शास्त्रार्थ के दौरान पौराणिक विद्वान ने कहा - मुझे एक लघु शंका है। लघु का अर्थ है छोटा। शंका का अर्थ है जिज्ञासा। इस पर वैदिक विद्वान ने उत्तर दिया कि लघुशंका कर उसे अपने ही मुँह में भर लें। लघुशंका का अर्थ होता है पेशाब। इस घटना को वक्ता ने कुछ इस अंदाज में सुनाया जैसे कि यह वैदिकों की पौराणिकों पर विजय की घोषणा थी। मैं सभागृह में सबसे पीछे की पंक्ति में बैठा हुआ था। सामने मंच पर वक्ताओं के पीछे दीवार पर एक बहुत बड़ा बैनर लगा हुआ था जिस पर बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था "शास्त्रार्थ"। एक बाहरी द्रष्टा के रूप में मैंने उस दिन जाना कि आर्यसमाज के विद्वानों में विद्वता का स्तर क्या है एवं उनकी दृष्टि में "शास्त्रार्थ" के मायने क्या हैं। हालांकि लघुशंका की यह कहानी आज से 40 वर्ष पहले भी मैंने सुनी थी पर तब मुझमें यह समझ नहीं थी कि आर्यसमाज की ऐसी मनोवृत्ति हिन्दू समाज के लिए कितनी घातक थी।

सभा की समाप्ति के पश्चात , एक आर्यसमाजी से मैंने कहा कि चाहे आर्यसमाजी अपने- आपको हिन्दुओं से अलग क्यों न मानें पर आर्यसमाजियों में एवं हिंदुओं में एक समानता तो अवश्य है कि दोनों सनातनधर्मी हैं। जिस व्यक्ति ने उत्तर दिया वह आय-आय-टी से पी-एच-डी कर रहा था, अतएव आशा की जा सकती है उसे इतनी समझ तो अवश्य ही थी कि वह क्या कह रहा है। उसका उत्तर था - केवल आर्यसमाजी ही सनातन धर्मी हैं, हिन्दू नहीं। इस प्रकार से उसने उस कड़ी को भी काट दिया जो एक आर्यसमाजी को, वेदों के माध्यम से, हिंदुओं से जोड़ता था। आर्यसमाजियों में यह अलगाव की भावना अत्यंत गहरी है।

आर्यसमाजियों के रेकॉर्ड की सूई बस एक ही जगह पर अटक गई है। भिन्न-भिन्न आर्यसमाजियों को अलग- अलग स्थितियों में मैंने एक ही रट लगाते हुए पाया - हिन्दू आपकी पहचान ही नहीं है , बताइये हिन्दू शब्द आया कहाँ से , वेदों में तो है ही नहीं। यदि आप अपना नाम मनसुखराम बताते हैं और सारी दुनिया आपको मनसुखराम के नाम से जानती है, तो क्या पहले वेदों में खोजने बैठेंगे कि मनसुखराम वहाँ है कि नहीं ? यदि हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहता है और यदि सारी दुनिया हिन्दू को हिन्दू नाम से जानती है , तो यह समय नहीं कि इस विवाद में समय गँवायें। उससे भी बड़ी समस्यायें हमारे सामने आज हैं जिनसे हमें पहले निपटना होगा।

एक सज्जन से मैंने एक छोटासा प्रश्न पूछा था "क्या आप आर्यसमाजी हैं" इस बात का जिक्र किये बिना कि यह प्रश्न मैं उनसे क्यों पूछ रहा हूँ। उनका स्पष्ट उत्तर (11-5-2007) यह था "आर्यसमाज...(स्थान)...का मैं गत (संख्या) वर्षों से प्रधान (अर्थात् अध्यक्ष) हूँ। पहले मैं हिन्दू हूँ। आर्यसमाज को हिन्दू शब्द से घृणा है, वे स्वयं को आर्य कहलाना पसन्द

करते हैं। आपने जिज्ञासा की, अतः मैं अपने विषय में जानकारी दे रहा हूँ। मेरे पिता..."

अतः फ़र्क करना सीखिए उनमें (1) जो अपने-आपको "पहले हिंदू" और "फिर आर्यसमाजी " मानते हैं और (2) जो अ पने-आपको केवल आर्यसमाजी मानते हैं, हिंदू नहीं।

अरे, हिंदू का हृदय तो इतना विशाल है कि वह सबको अपने में समा ले। जब मैंने हिंदू की इस भावना का जिक्र किया तो बम्बई आय- आय-टी से पी-एच-डी करने वाले नवयुवक विद्वान ने एक अपमानजनक जुमला सुनाया। मैंने उनसे कहा कि फिर से सुनायें पर तब वे टाल गये। बस में साथ यात्रा करते समय मैंने पुनः वही अनुरोध किया पर इस बार भी वह टाल गये यह कह कर कि बताउँगा। उन्हें अहसास हो चुका था कि आर्यसमाजियों के दिल की बात अनजाने ही उनके जबान पर आ गई थी। वह भी एक लेखक के सामने जिसकी लेखनी द्वारा वह बात हिन्दुओं तक पहुँच सकती है। चतुर आर्यसमाजी यह भली- भाँति जानते हैं कि उनके हिंदू-सुधारक होने का मुखौटा इस हिंदू- बहुल समाज में बरकरार रखना कितना आवश्यक है। अतः वे बहुधा अपनी वास्तविक सोच को हिन्दुओं के सामने जाहिर नहीं करते।

आर्यसमाजियों द्वारा लिखित पुस्तकें एवं पत्र मुझ तक पहुँचते रहे हैं। इन सभी में देवी- देवताओं एवं मूर्तिपूजा के प्रति तिरस्कार की भावना बड़ी स्पष्ट रूप से झलकती रही है। हिंदू देवी-देवताओं को वे काल्पनिक मानते हैं। वेदों में सर्वप्रथम वेद ऋग्वेद इस बात की घोषणा करता है कि "ब्रह्माण्डीय सत्य एक है परन्तु प्रज्ञावान उसे भिन्न-भिन्न ढंग से अनुभव करते हैं - जैसे इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, शक्तिशाली गरुत्मत, यम एवं मातरिस्वान" आइ-एस-बी-एन 81-85990-52-2 ऋग्वेद 1-164-46 हम

पाते हैं कि आर्यसमाजियों की निष्ठा वेदों के प्रति है। जो इन्द्र को दे वता मानते हैं, ऋग्वेद उन्हें प्रज्ञावान मानता है। अतः आर्यसमाजी भी उन्हें प्रज्ञावान ही मानते होंगे। अब यदि किसी देवता का नाम वेदों में नहीं है तो वह काल्पनिक हो गया। जो ऐसे देवता को मानता है वह अज्ञानी हो गया। पहले यह पता लगाइये कि वेदों में किन- किन देवी-देवताओं के नाम नहीं हैं। यदि उनकी पूजा करना नहीं छोड़ते तो आप ज्ञानी नहीं बन सकते। यह है आर्यसमाजियों की सोच। वे तर्क के द्वारा आम- हिन्दू को गुमराह करते हैं पर उनके तर्कों की काट पेश करो तो चिढ़ जाते हैं।

आर्यसमाजी दावा करते हैं कि केवल वेद ही ईश्वरीय वाणी है। मुसलमान दावा करते हैं कि केवल कुरआन ही ईश्वरीय वाणी है। ईसाई दावा करते हैं कि केवल बाइबिल ही ईश्वरीय वाणी है। तीनों के दावे एक दूसरे से टकराते हैं। तीनों अपनी "मान्यताओं" को ईश्वरीय "ज्ञान" का नाम देते हैं। तीनों में से किसी को भी "मान्यता" एवं "ज्ञान" के बीच का फरक नहीं मालूम है जो उनके अज्ञान का परिचायक है।

वे तीनों हिन्दू को मूर्तिपूजक एवं अज्ञानी मानते हैं। उनकी साख कुछ इतनी बढ़ चुकी है कि अनेक जाने-माने हिन्दू धर्माचार्य भी अपने-आपको "ज्ञानियों" की श्रेणी में स्थित करने के लिए ईश्वर के निरा कार होने का दावा करते हैं ताकि वे अपने-आपको "मूर्तिपूजक अज्ञानियों" की श्रेणी से अलग रख सकें एवं आज की प्रचलित "मान्यता" के साथ बहते रह सकें।

ये सभी ज्ञानी जन उस "असीमित" ईश्वरीय सत्ता को अपने "सीमित" ज्ञान के आधार पर अपनी समझ की "सीमाओं" में बाँधना चाहते हैं यह कह कर कि ईश्वर "निराकार" है "साकार नहीं"। जिस ईश्वर ने आपका चेहरा रचा है , क्या वही ईश्वर अपने लिए एक चेहरा तक नहीं रच सकता? जिस ईश्वर ने आठ हाथ- पाँव वाले समुद्री जीव ऑक्टोपस को

रचा, क्या वही ईश्वर "अपने लिए" आठ हाथ-पाँव नहीं रच सकता? आप यदि उसे उसी मूरत में देखना चाहते हैं, और आपकी भक्ति में यदि शक्ति है, तो क्या वह स्वयं को उसी रूप में प्रगट नहीं कर सकता? प्रश्न उसकी क्षमता का नहीं, बल्कि आपकी भक्ति की शक्ति का है।

कण-कण में बसने वाले राम की अनुभूति अपने हृदय में करने के लिए "ज्ञानी" होना आवश्यक नहीं। जब वह मिल जाता है तो ज्ञान आपका सहचर बन जाता है। उस ईश्वरीय सत्ता ने जिसने इस जग को रचा है , जब आप "उसी को" एक मूर्ति के माध्यम से पूजते हैं , तब "उसे" यह जानने के लिए कि "वही" पूजा जा रहा है किसी वेद , या कुरआन, या बाइबिल के पन्ने पलटने नहीं होते यह समझने के लिए कि "वह" स्वयं साकार है या निराकार। "उसे" इन परिभाषाओं में बाँधने वाले केवल यही जताते हैं कि वे अब भी "उससे" कितने दूर हैं।

यहूदी/ईसाई/इस्लाम के आगमन से पहले सारा विश्व मूर्तिपूजक था , चाहे वह योरप रहा हो, या अमरीका या फिर ऑस्ट्रेलिया। इन तीनों ने मूर्ति पूजा का सफाया कर दिया क्योंकि उन्हें मूर्तियों के स्थन पर मूसा/ईसा/मुहम्मद को बिठाना था और वे अपने इस कोशिश में सफल भी हुए। मूसा /ईसा/मुहम्मद का पौवा दयानन्द से अधिक भारी था इसलिए वे आर्य समाज की तुलना में अधिक दिन तक टिक गये।

एक बालक था। महाशिवरात्री की पूजा थी। शिवजी के सामने मिठाइयाँ रखी हुई थीं। एक चूहा आया और एक मिठाई उठा ले गया। मिठाई बालक को दी गई होती तो वह चूहे को अपने हिस्से की मिठाई लेने न देता। चूहे को भगा देता। चूहा यदि चालाकी से उठा भी लेता तो बालक उसे खदेड़ता, उसके पीछे भागता। क्या मजाल थी कि चूहा उसके हिस्से की मिठाई ले भागता! पर, ये कैसे शिवजी थे, जो कुछ भी न कर पाये?

क्या शिवजी ने कहा था कि मुझे मिठाई दे , ताकि वे उस मिठाई की पहरेदारी करते? जिसने यह संसार रचा , क्या वह एक मिठाई के पिछे भागता?

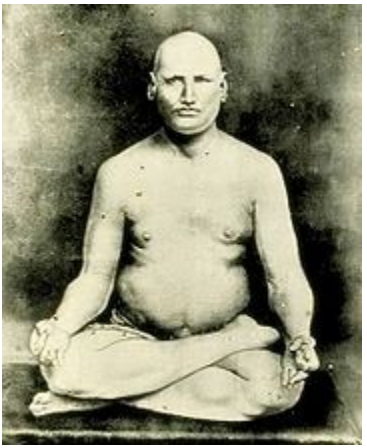

आरेख 2 दयानन्द [2]

बालक बड़ा हुआ पर उसकी बुद्धि बड़ी न हुई। ढेरों पोथियाँ पढ़ी , सर मुड़वा कर सन्यासी बना , अन्य ब्राह्मणों को अपने दल में शामिल करने वाराणसी पहुँचा। वहाँ दाल न गली तो नया दल बना लिया। उन दिनों बड़ी भरमार थी त्रिशंकुओं की जो ईसाई मिशनरी स्कूलों में शिक्षा पाकर अन्तःकरण से हिन्दू न रहे। ईसाइयों में सत्साहस का सदा ही बड़ा अभाव रहा है , अतः उनके ईसाई मिशनरी शिक्षक उन त्रिशंकुओं में वह सत्साहस न भर सके जो उन्हें ईसाई बन जाने की नैतिक योग्यता देता। इन अधर में लटके त्रिशं कुओं को एक धरा की बड़ी जरूरत थी जिसे वे अपना कह सकें। दयानन्द ने उन्हें वही आधार दिया और साथ ही पोथियों का ईश्वर। इस प्रकार नींव पड़ी आर्यसमाज की , जो था पोथी पढ़े विद्वानों का एक जमघट जिन्हें शास्त्रार्थ में बड़ी ही रुचि हुआ करती थी। इनके ज्ञान का मूल आधार था ईसाई- अंग्रेज़ी शिक्षा जिसने इनकी आँखों

पर एक ऐसा चश्मा चढ़ा दिया था जिसे पहनकर जब वे हिन्दू धर्म की ओर देखते तो उन्हें केवल कालिख ही कालिख नज़र आती थी। दयानन्द के सान्निध्य में उन्होंने फ़र्राटे से संस्कृत बोलना भी सीख लिया। इस प्रकार उपजी एक वर्ण-संकर संस्कृति जो न तो हिन्दुओं के अपने हुए न ईसाइयों के।

आरेख 3 क्वीन्स कॉलेज वाराणसी[3]

आरेख 4 बनारस द क्वीन्स कॉलेज पोस्टकार्ड ब्रिटिश पाउन्ड0.50 रॉयल मेल फ़र्स्ट क्लास [4]

रुडॉल्फ होर्नले (Roudolf Hoernley) बनारस के प्रख्यात गवर्नमेन्ट क्वीन्स कॉलेज के प्राचार्य हुआ करते थे। समय था विक्रम संवत 1926 (अर्थात 1869 ईस्वी)। अभी आर्यसमाज की स्थापना नहीं हुई थी। यह उससे छः वर्ष पहले की घटना है। उन दिनों रुडॉल्फ होर्नले कई बार दयानन्द से मिले, उनको जाँचा-परखा, और उसके पश्चात अपने लेख मे उन्होंने यह बात लिखी "दयानन्द हिंदुओं के मन में यह बात भर देगा कि आज का हिंदूधर्म, वैदिक हिन्दू धर्म के पूर्णतया विपरीत है, और जब यह बात हिन्दुओं के मन में बैठ जायेगी तो वे तुरंत हिंदूधर्म का त्याग कर देंगे; पर तब दयानन्द के लिए उन्हें वैदिक स्थिति में वापस ले जाना सम्भव न होगा, ऐसी स्थिति में हिंदुओं को एक विकल्प की खोज होगी जो उन्हें हिंदू से ईसाई धर्म की ओर ले जायेगी।"[5]

सदियों से ईसाइयों ने ब्राह्मणों पर अकथ्य अत्याचार किए (उठो अर्जुन 2) पर ब्राह्मणों के प्रति हिन्दूसमाज की आस्था को न डिगा पाये। अब एक हिन्दू सन्यासी उन्हीं ब्राह्मणों के मुख पर कालिख पोतने को तैयार खड़ा था। इससे बेहतर अवसर और क्या हो सकता। अपनी संचार-व्यवस्था का सहारा लेकर ईसाइयों ने कुछ ऐसी हवा बाँधी कि ब्राह्मण एक षड़यंत्रकारी दुष्ट के रूप में नजर आने लगा [6] और दयानन्द एक महान समाज सुधारक के रूप में निखरता दिखा। ईसाई- अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली पर आधारित स्कूल की पाठ्य- पुस्तकों में भी दयानन्द को एक बड़े समाज सुधारक के रूप मे दिखाया जाना आरम्भ किया गया। ऐसी छवि आँकी गई कि जैसे एक महान ज्ञानी समाज सुधारक ने बीड़ा उठाया है उस सड़े-गले हिन्दूसमाज का उद्धार करने के लिए जिसे ब्राह्मणों ने सदियों से बरगला रखा था।

ईसाई-अंग्रेज़ बखूबी जानते थे कि हिन्दूसमाज की धुरी है ब्राह्मण वर्ग , और जब तक वे ब्राह्मण वर्ग का समूल उन्मूलन नहीं कर पाते तब तक उन्हें हिन्दुओं पर एकाधिपत्य का अवसर नहीं मिलेगा। अतः ब्राह्मण वर्ग उनका पहला निशाना बन चुका था। उन्हें आर्यसमाज को बढ़ावा देना था क्योंकि वे जानते थे कि एक "विभीषण ही लंका ढा सकता है "। उन्होंने दयानन्द में उस योग्यता को पहचाना जो हिन्दुओं की सोच को बखूबी तोड़-मरोड़ सकता था। इस प्रकार स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से दयानन्द के महान समाज सुधारक होने की जो तस्वीर खींची गई वह आज भी अपना जलवा दिखा रही है।

दयानन्द इस भ्रान्ति में जीते रहे कि वह हिन्दूसमाज का भला कर रहे हैं। क्या उन्हें हिन्दूसमाज की पूरी समझ थी ? या फिर उन्होंने हिन्दूसमाज को केवल सतही तौर पर ही देखा था ? हिन्दूसमाज में जो भी दोष उन्हें दिखाई दिए , क्या उनकी जड़ तक पहुँचने की चेष्टा उन्होंने कभी की? समाजसुधार की अपरिपक्व उत्तेजना में उन्हें भ्रम हो गया कि जिस टाँग पर हिन्दूसमाज हजारों वर्षों से टिका रहा [7] उस में जहर फैल चुका है। दयानंद के इस भ्रम को ईसाई- अंग्रेज़ों ने अपनी संचार-व्यवस्था एवं पाठ्य-पुस्तकों के सहारे हम हिन्दुओं के मन में अच्छी तरह से बिठा दिया।

दयानन्द सरस्वती (1824-1883) कोई नई बात नहीं कह रहे थे। 50 वर्ष पहले वही बात कह गये थे निराकार ब्र ह्म के उपासक , मूर्तिपूजा के विरोधी, राजा राम मोहन रॉय (1772-1833)। ब्राह्मोसमाज[8] के संस्थापक। मेधावी, 15 वर्ष की आयु में संस्कृत , अरबी, फारसी के ज्ञाता। ईसाई-अंग्रेज़ों ने उन्हें एक महान समाज सुधारक की पहचान दी। इससे ईसाई-अंग्रेज़ों के दो उल्लू सीधे हुए। एक - हिंदू समाज को एक सड़े हुए समाज

की पहचान दी गई। दो - हिंदू समाज में एक विघटन की प्रक्रिया को बल मिला। ईसाई- अंग्रेज़ों ने अपने पुराने अनुभव को दयानन्द पर भी आजमाया।

आरेख 5 राजा राम मोहन रॉय ब्रह्मोसमाज के संस्थापक[9]

हिंदूसमाज में अपनी आस्थाओं के प्रति शंका के अनगिनत बीज आर्यसमाज ने बोये, प्राण-दायिनी जल का रूप धर कर , हिंदूसमाज रूपी वृक्ष की जड़ तक पहुँचकर, उसे सींचने के बहाने, धीरे-धीरे उन्हीं जड़ों को चाट गये।

कॉलेज के दिनों की मुझे याद आती है। घर से भाग कर जब किसी को शादी करनी होती तो उसके कदम आर्यसमाज मंदिर की ओर बढ़ते। दोनों बालिग हैं और दोनों राजी हैं , इतना ही काफी होता। वे वहाँ से शादी

करके आ जाते जो कानूनी तौर पर वैध होता। इस नव-दम्पति की निष्ठा अब किसके प्रति होती ? उनका नया मसीहा तो आर्यसमाज था जिसने ऐन मौके पर उनकी म दद की। आगे चलकर इस दम्पति के बच्चे भी होते। यह दम्पति अब अपनी संतानों की निष्ठा को कौन सी दिशा देता ? वह आर्यसमाज जिसकी परोक्ष उपज हैं ये बच्चे? या फिर वह हिंदूसमाज जो उनकी जड़ थी एक दिन ? अपनी जड़ों से वे कटते जाते। आर्यसमाज के अनुयायियों की संख्या बढ़ती जाती। समाज का सुधार जो हो रहा था!

भला कोई उसका सुधार करता है जिसे वह अपना दुश्मन मानता हो , जिससे वह घृणा करता हो, जिसके प्रति उसके मन में कोई सद्भावना न हो, जो उसे अपना न मानता हो, जो उसे तोड़ कर अपनी संख्या बढ़ाना चाहता हो? हाँ, वह सुधारक का मुखौटा पहनेगा, पर केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अथवा अपने अहं की परितुष्टि के लिए।

दयानन्द ने वह अभियान अपने अहं की परितुष्टि के लिए चलाया। उसके चेले-चामुण्डों ने उस अभियान को गुरु के प्रति अंधश्रद्धा एवं/अथवा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए आगे बढ़ाया। अंग्रेज़ सरकार की सं चार-व्यवस्था एवं शिक्षा-व्यवस्था ने उस प्रक्रिया को समाज-सुधार का जामा पहनाया।

क्या आर्यसमाज ने हिंदूसमाज का वस्तुतः सुधार किया? जो उत्तर आपको पढ़ाया गया है बचपन से वह है - हाँ। यह सिक्के का एक पहलू है। और दूसरा पहलू? आर्यसमाज ने हिंदूसमाज को तोड़ा और अपने आप को जोड़ा - हिंदू के मन में अपनी आस्थाओं के प्रति शंका के बीज बोकर।

यही कार्य ईसाई ने भी किया पर दोनों के स्वार्थ आपस में टकराये। इसकारण आर्यसमाज के लिए आवश्यक हो गया कि हिंदू को सचेत करते कि ईसाई की मत सुनना। आर्यसमाजियों ने हिंदू को यह नहीं बताया कि हम भी तुम्हें अपनाना चाहते हैं, तुमसे तुम्हारी पहचान छीनकर। तुम्हारी

पहचान जो है वह है एक अज्ञानी की। सारे ज्ञान की पोंटली तो ईश्वर केवल हम आर्यसमाजियों के ही सुपुर्द कर गए हैं!

आरेख 6 केशवचन्द्र सेन [10]

केशवचन्द्र सेन (1838-84) ने ब्राह्मोसमाज में एक अलग प्रकार की भूमिका निभाई। इंग्लैंड की साम्राज्ञी विक्टोरिया से भी मिले (1870)।

आरेख 7 रामकृष्ण परमहंस देव [11]

केशवचन्द्र सेन का सौभाग्य था कि वे श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव जैसे युगपुरुष के सान्निध्य में आये। श्रीरामकृष्ण के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया। वे उनसे मिलते रहे। जब व्यक्ति स्वाभाविक रूप से मृत्यु के करीब जाता है तो उसमें सत्य के प्रति निष्ठा बढ़ती है। मृत्यु की तरफ अग्रसर होते हुए केशवचन्द्र सेन ने भी सत्य के दूसरे पहलू को जाना व समझा। अपने घर में माँ काली की मूर्ति की स्थापना की। मृत्यु पर्यंत उसके पूजक बने रहे। उन्हें तो राह मिल गई और विघटित ब्राह्मोसमाज धीरे-धीरे "विलय" की ओर अग्रसर हुआ।

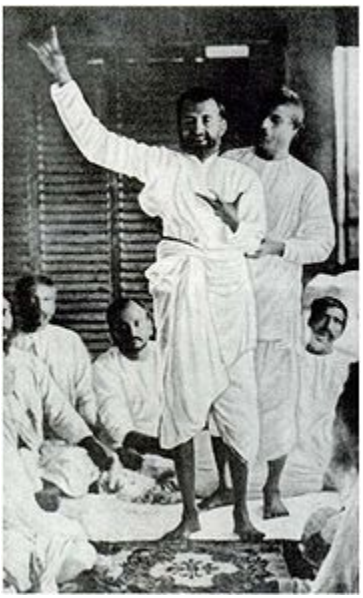

आरेख 8 श्रीरामकृष्ण परमहंस केशवचंद्र सेन के घर पर समाधिअवस्था में - उनके भतीजे हृदय ने उनके शरीर को सहारा दिया हुआ है तथा चारों ओर ब्राह्मोसमाज के सदस्य बैठे हुए [12]

दयानन्द भी श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव से मिले। रामकृष्ण में उन्हें एक अनपढ़ अज्ञानी दिखा। अर्जुन ने श्रीकृष्ण में नारायण को देखा था और दुर्योधन ने एक ग्वाले को। अर्जुन ने निहत्थे श्रीकृष्ण को अपने सारथी

(दिग्दर्शक) के रूप में माँगा , जबकि दुर्योधन विशाल नारायणी सेना को पाकर प्रसन्न हुआ। केशवचन्द्र ने गुरु के अनुभव लिए , दयानन्द ने पोथियों में ईश्वर को खोजा।

दयानन्द को ईश्वर के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता तो उस तेज में उसका "अहं" जलकर भस्म हो गया होता। यदि उसके अस्तित्व का ईश्वरीय अस्तित्व के साथ समागम हो चुका होता तो उसे इस बात का ऐलान करने की आवश्यकता ही न होती कि केवल आर्यसमाज को ही सच्चे ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान है। ईश्वर प्राप्ति के पश्चात यह संसार भला उसे और क्या दे सकता था जिसे पाने के लिए ढोल बजाकर जताने की आवश्यकता होती कि केवल हमें ही सच्चे ईश्वर का ज्ञान है? क्या आपने ईश्वर को स्वयं कभी उद्घोषणा करते हुए सुना है कि मैं ईश्वर हूँ ? उसी प्रकार जिसके अहं का विलय ईश्वरीय सत्ता में हो चुका हो उसे इस बात की घोषणा करने की क्या आवश्यकता कि उसे ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है? ऐसा तो वही दम्भी करेगा जिसे ईश्वरीय प्रकृति का कोई भान ही नहीं।

बार-बार भिन्न-भिन्न आर्यसमाजी सन्यासियों एवं आर्यसमाजी पोथी- पढ़े-पंडितों से मैं यही सुनता रहा हूँ कि सच्चे ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान केवल आर्यसमाज को ही है। यह भ्रांति उनके मन में समायी न होती यदि आर्यसमाज के संस्थापक ने इस भ्रम का बीज उनके मन में बोया न होता।

आर्यसमाजियों की मान्यता है - (1) जो मूर्ति स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता वह अपने पूजकों की रक्षा क्या करेगा (2) वेदों में प्रतिपादित ईश्वर ही सच्चा ईश्वर है। तो क्या वेदों में प्रतिपादित ईश्वर आर्यसमाजियों की रक्षा करेगा? एक आर्यसमाजी गृहस्थ पंडित जिसने आर्यसमाज का

डंका योरप में बजाया , उनके सामने यह प्रश्न रखा - क्या आपने स्वयं अपने व्यक्तिगत अनुभव से सच्चे ईश्वर के स्वरूप को जाना? उनका उत्तर था "ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान केवल आर्यसमाज को ही है "। यह एक ऐसी बात है जिसे वे सिद्ध नहीं कर सकते। अर्थात , आर्यसमाजी अपनी "मान्यता" को "ज्ञान" की संज्ञा देते है!

आर्यसमाजी तर्क को प्राधान्य देते हैं। तर्क को मा ध्यम बनाकर अपने ज्ञानी होने का सिक्का जमाते हैं। जहाँ उनका तर्क उनका साथ नहीं देता वहाँ वे अपनी मान्यताओं को ज्ञान का दर्जा देते हुए खोटे सिक्के को असली कहकर चला देते हैं।

"समय" से बड़ा पारखी कोई नहीं होता। उसी "समय" के मापदण्ड पर तबसे टिका हुआ है यह हिन्दू समाज जहाँ मानव की याददाश्त तक नहीं पहुँचती। जाने कितने तथाकथित समाज सुधारक आये , और चले गये। इन सभी का अस्तित्व तो पानी के उन बुलबुलों की तरह है जिनकी आयु क्षणिक होती है। "समय" के साथ इनके "सच्चे" ईश्वरीय ज्ञान का दम्भ भी टूटता है और इनका अपना अस्तित्व भी मिटने के कगार पर आ खड़ा होता है। अरे , हिन्दूसमाज में जो खामियाँ आयीं वे तो हजारों वर्षों के बाद - वह भी म्लेच्छों /यवनों के लम्बे संग- दोष से। पर ये समाज-सुधारकी बुलबुले तो सैंकड़ों वर्षों तक भी न जी पाये।

आर्यसमाज गुटों में बँट चुका है (स्वामी अग्निवेश बना म अन्य) और आर्यसमाज की सम्पत्ति को लेकर दोनों आपस में लड़ रहे हैं। आचार्य प्रियदर्शन एवं स्वामी जगदीश्वरानन्द, दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश मे खोट निकाल रहे हैं। यज्ञादि विषयों पर अपनी- अपनी मान्यताओं को लेकर महात्मा प्रभु आश्रित, आचार्य विश्वेश्रवा, पंडित युधिष्ठिर मीमांसक, स्वामी मुनीश्वरानन्द, स्वामी इन्द्रदेव यति (पीलीभीत वाले) आपस में लड़ रहे

हैं।[13] आर्यसमाजियों की सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत धर्मार्य सभा उलझे हुए मसलों को सुलझाने का काम करती है। सार्वदेशिक सभा ने कर्मकाण्ड के विषय पर तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं। तीनों एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं। आर्यसमाज की एकसौपच्चीसवीं जयंती पर मुंबई में आयोजित महासम्मेलन में स्वामी सत्यम, आचार्या सूर्या पाणिनी, प्रोफेसर ज्वलन्त कुमार, डॉ सोमदेव, इत्यादि के बीच इस बात पर विवाद खड़ा हो गया कि यज्ञ की आहुति को "ओम स्वाह" कहकर डालना उचित है या नहीं। लम्बे समय तक यह विवाद विभिन्न पत्रिकाओं में लेखों के माध्यम से चलता रहा।[14] आर्यसमाजी स्वयं जानते नहीं क्या सही है और क्या गलत। हिन्दुओं में ज्ञान बाँटने के लिए डुगडुगी बजाते हुए चले आते हैं!

जब भी कोई अप्राकृतिक घटना घटती है तो उसकी अकाल मृत्यु हुआ करती है। उदाहरण ब्राह्मोसमाज , आर्यसमाज इत्यादि की स्थापना जो अप्राकृतिक घटनाएँ थीं। इन समाजों की स्थापना कतिपय तथाकथित ज्ञानियों द्वारा हुआ था जो वास्तव में अज्ञानी थे। कारण उनके ज्ञान का आधार पोथियाँ थीं ईश्वरीय सान्निध्य नहीं। इस ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय ज्ञान के सिवा जो कुछ भी है वह अनित्य है , अज्ञान है, तथा ज्ञान का भ्रम मात्र है।

जब भी आप आर्यसमाजियों को हिंदुओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुए देखें तो अपने-आपसे एक सहज सा प्रश्न पूछें - क्या इस मुद्दे पर आर्यसमाज का स्वार्थ हिंदूसमाज के हितों से टकराता है ? आपके सामने जवाब स्पष्ट होगा - नहीं। मेरे और आपके स्वार्थ जबतक समान हों तो भला साथ चलने में किसे आपत्ति हो सकती है ? परीक्षा की घड़ी तो तब आती है जब आपको मेरे खातिर अपने स्वार्थों का बलिदान करना होता है। अतः अपने-आपसे दूसरा सवाल पूछें - यदि मसला कुछ ऐसा

होता जहाँ आर्यसमाज के स्वार्थ हिंदूसमाज के हितों से टकराते तब क्या आर्यसमाजी हिंदुओं का दामन थामते? तीसरा प्रश्न - जब आर्यसमाजी (1) हिंदुओं को अपना दुश्मन मानते हैं (2) हिंदुओं से घृणा करते हैं (3) हिंदुओं को सनातनधर्म का अंग नहीं मानते (4) हिंदू देवी-देवताओं के प्रति तिरस्कार की भावना रखते हैं (5) हिंदुओं को दिशाहीन अज्ञानी मानते हैं - तब क्या वे हिंदुओं की खातिर अपने स्वार्थों का बलिदान देंगे?

पहुँचे हुए आर्यसमाजी (कई, एक नहीं) हमें बताते हैं कि जब देश का बँटवारा हुआ तब हिन्दुओं की रक्षा में आर्यसमाजी सबसे आगे रहे। आर-एस-एस के ऊपरी तबके के लोग भी कुछ इसी तरह का दावा करते हैं। उन्हें सुनकर कुछ ऐसा लगता है जैसे हिन्दू तो "असहाय" था जिसके उद्धारक ये "अकेले" ही थे। पहले तो उन्हें आपस में बैठ कर यह तय करना होगा कि वह "अकेला" कौन था - आर्यसमाज या फिर आर-एस-एस-एस। फिर देखना होगा कि क्या हिन्दू इतना नीरिह , इतना असहाय था कि वह केवल एक "बैसाखी" की मदद से ही चल सकता था?

यह भी सोचना होगा कि आर्यसमाजी मुसलमानों से लड़े तो क्यों लड़े ? क्या इसलिए कि वे इन "अज्ञानी हिन्दुओं" एवं "घृणा के योग्य हिन्दू परिचय" से इतना प्रेम करते थे कि उन्हें बचाने के लिए इन्होंने अपने जान की बाजी लगा दी ? या फिर इसलिए कि वे भली- भाँति जानते थे कि जब तक हिन्दू का अस्तित्व है तभी तक आर्यसमाजी साँस ले पायेंगे, जिस दिन हिन्दू मिटेगा उ सके बहुत-बहुत पहले आर्यसमाज मिट चुका होगा। क्या उन्होंने अपने जान की बाजी लगायी इसलिए कि वे जानते थे कि मुसलमान की छुरियाँ आर्यसमाजी को उतनी ही आसानी से हलाल करेंगी जितनी वे हिन्दुओं का गला काटेंगी ? क्या अपने अस्तित्व को

खतरे में देख वे मुसलमानों से लड़े औ र अपनी वाक-चातुरी का प्रयोग कर इस बात का श्रेय भी लिया कि वे हिन्दुओं की रक्षा में सबसे आगे रहे? कुछ उसी प्रकार से, जैसे पिछले सौ वर्षों के दौरान हिन्दू को हिन्दू समाज से लगातार "तोड़ते" हुए, अपनी "संख्या" बढ़ाते हुए, हिन्दुओं में "हीनता की भावना" को कूट-कूट कर भरते हुए, हिन्दुओं का "सुधारक" बनने का "श्रेय" भी लेते गए। क्या इसी को कहते हैं चित भी अपनी, पट भी अपनी?

यदि आर्यसमाजी हिन्दुओं के सच्चे हितैषी बनना चाहते हैं तो उन्हें सर्वप्रथम हिन्दू-विद्वेष का पूर्णतया त्याग करना होगा और जो यह नही कर पायेंगे उन्हें आर्यसमाज त्यागना होगा। जो आर्यसमाजी हिन्दुओं का पक्षधर होने का दावा करें, उन्हें मन, वचन, कर्म से हिन्दू बनना होगा। दो नाँवों पर पाँव जमाकर सफ़र का यह अंदाज स्वीकार्य न होगा।

जैन समुदाय

जैन समुदाय एवं आर्यसमाजियों में एक मूलभूत अंतर है। मैं नहीं जानता कि जैन समुदाय ने (आर्यसमाजियों की तरह) हिन्दूसमाज का कभी अहित किया।

हालांकि यह सत्य है कि जैनसमाज के विभिन्न वर्गों ने हिन्दूसमाज से अलग होने के अनेक प्रयत्न किए। पिछले अस्सी वर्षों में आठ बार उन्होंने विभिन्न उच्चन्यायालयों के दरवाजे खटखटाये , यहाँ तक कि सर्वोच्च न्यायालय तक भी पहुँच गए। आप चाहें तो किसी वकील से निम्नोक्त मुकदमों के विवरण ले सकते हैं - (1) मद्रास उच्चन्यायालय AIR 1927 मद्रास 228 (2) बंबई उच्चन्यायालय AIR 1939 बंबई 377 (3) AIR 1954 SC 282 (4) AIR 1958 SC 956 (5) कलकत्ता उच्चन्यायालय

AIR 1968 कलकत्ता 74 (6) 1 MLJ 140 (7) सर्वोच्च न्यायालय निर्णय दिनांक 8 अगस्त 2005 अपील क्रमांक 4730 of 1999 (8) सर्वोच्च न्यायालय निर्णय[15] दिनांक 21 अगस्त 2006 मुकदमा क्रमांक 9595

प्रश्न (१) पिछले अस्सी वर्षों में इतनी बार न्यायालयों के दरवाजे क्यों खटखटाए गए? (२) क्या हिंदूसमाज ने बहिष्कार किया था जैनियों का? (३) क्या जैनसमाज अपनी अलग पहचान चाहता था और जैनसमाज को हिंदू कहलाना गँवारा न था? (४) क्या जैनसमाज का अपना कोई स्वार्थ छुपा था इसमें? (५) आज यदि जैनसमाज किसी मसले पर हिंदूसमाज का साथ दे रहा है तो क्या इसलिए कि उस मसले पर उनका स्वार्थ हिंदूसमाज का साथ देने में ही है? (६) कल यदि कोई ऐसा मसला सामने आता है जहाँ जैनसमाज का स्वार्थ सिद्ध होता है, हिंदूसमाज का साथ "न" देने में, तब जैनसमाज क्या करेगा?

कहते हैं कि हिन्दू ब्राह्मण जब जैनियों को वेद पाठ करते देखते (या फिर वेदों का पाठ सुनते हुए पाते) तो उनके कानों में ग र्म सीसा उँडेल देते। पर आर्यसमाजियों का तो दावा रहा है कि "केवल वे ही" वैदिक हैं और हिन्दू ब्राह्मण पौराणिक। फिर भला पौराणिकों को क्या समस्या होती यदि जैन वेद पढ़ /सुन रहे थे? यदि किसी को आपत्ति होती तो वह "वैदिक" आर्यसमाजियों को। तो फिर कौन जैनियों के कानों में गर्म सीसा डालता था -- तथाकथित पौराणिक हिन्दू ब्राह्मण या फिर स्वनामधन्य "वैदिक" आर्यसमाजी? या फिर सारी बात ही एक झूठ थी जो जानबूझ कर फैलायी गई थी हिन्दू ब्राह्मणों को अपदस्थ करने एवं बदनाम करने की दृष्टि से ? और यदि ऐसा था तो किसने किया था यह षड़यंत्र -- आर्यसमाजियों ने या फिर ईसाई मिशनरी शिक्षकों ने , या फिर दोनों ने

एक दूसरे का साथ देकर ? किसके स्वार्थों की सिद्धि होती ब्राह्मण को बदनाम कर? दोनों की।

एक और प्रश्न उठता है मेरे मन में। भला जैन वेद पाठ करते या सुनते ही क्यों जब वेद तो आर्यसमाजियों के अनुसा र सच्चे ईश्वर के रूप का वर्णन करता है और जैन तो ईश्वर में विश्वास ही नहीं करते। वे तो केवल मानव शरीर धारी तीर्थंकर में विश्वास करते हैं। तो फिर क्या सारी की सारी बात "ब्राह्मण जैनियों के कानों में गर्म सीसा उँडेल देते थे" एक झूठ की बुनियाद पर टिका हुआ था जो एक बड़ा ऐतिहासिक षड़यंत्र था ब्राह्मणों के विरुद्ध?

सिक्ख समुदाय

क्या सिक्ख सचमुच अपने आपको हिन्दू मानते है? कुछ समय पहले तक भी पंजाब के हिंदू परिवार, अपने परिवार से एक-एक बेटे, सिक्खधर्म के हवाले किया करते थे। सिक्ख समुदाय न केवल हिंदुओं से जनमा-पनपा था, बल्कि हिंदुओं से ही फलता-फूलता भी रहा था। फिर एक समय आया जब सिक्ख अपनी अलग पहचान माँगने लगे। आगे चलकर अपने लिए अलग वतन (खालिस्तान) की भी माँग करने लगे।

आजकल कुछ ऐसा फैशन चल प़डा है कि हर कोई जो हिंदू धर्म से टूट-फूट कर निकला, वह यही दावा करता है कि उसके समुदाय का जन्म ही हिंदूसमाज में सुधार लाने के लिए हुआ था। जिसका भी वेबसाइट देखो वह यही दम भरता है। आर्यसमाजी, जैनी तो यह दावा करते ही थे, अब सिक्खों ने भी हल्के-हल्के यह दावा आगे ब़ढाना शुरु कर दिया है।[१६]

यहाँ तक कि अब हमारी सर्वोच्च न्यायालय भी अन्य पुस्तकों से उद्धरण देकर अपने निर्णयों में इन्हीं बातों को दोहराने लगी है।[१७]

पढ़ने वाले को लगता है कि जाने कितना सड़ा-गला रहा होगा यह हिंदूसमाज जो इसे इतने सारे सुधारकों की आवश्यकता पड़ गई। Seed 2 पढ़ें और दस्तावेजों से जानें कि वास्तविकता इसके विपरीत हुआ करती थी। ईसाई-अंग्रेज़ों की जिस कारीगरी का जिक्र उस पुस्तक में विस्तार से किया है, उसे अपना रंग तो लाना ही था। फिर जवाहरलाल की छत्रछाया में पनपे-पले हमारे मार्क्ससिस्ट इतिहासकारों ने भी ईसाई-अंग्रेज़ों की विरासत को आगे बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

समापन

अतएव इतना स्पष्ट जान लें कि जबतक हिंदूराष्ट्र न बनेगा तबतक आपकी समस्याओं का समाधान भी न मिलेगा। पर ऐसा हिंदूराष्ट्र आपके किसी काम न आयेगा जिसकी बागडोर ऐसे व्यक्तियों के हाथ में होगी जिनकी निष्ठा पर प्रश्नचिह्न लग सके। साथ ही आपको उन सभी की पहचान भी करनी होगी जो दिखते कुछ हैं, और होते कुछ। हिंदूराष्ट्र तो आपका "पहला पड़ाव" होगा। उसके पहले आपको अनेक जंगल पार करने होंगे। उन जंगलों से गुजरते राहों की पहचान करनी होगी। उन राहों पर अनेक घात बिछे होंगे जो आपको धोखे से फंदों में जकड लेंगे। हिंदूराष्ट्र तो आपका "पहला पड़ाव मात्र" होगा। आगे की यात्रा और भी लंबी एवं कठिन होगी। सारे अंगों में जो विष फैला दिया गया है, उसकी सफाई करने में दम निकल जायेगा। पर होकर रहेगा यह! उसके पश्चात ही हिंदूराष्ट्र के नवनिर्माण का पुनीत कार्य आरंभ हो सकेगा। पर इन सबके पहले आपको बहुत कुछ जानना होगा - जो कुछ जाना है अबतक, पहले उसे मिटा कर।

परिशिष्ट

हिन्दुओं के संगठित होने का प्रश्न

कुछ लोग हिन्दू के संगठित होने एवं संगठनों के एक मं च पर आकर संगठित रूप से काम करने की बात करते हैं। दूर क्षितिज में जहाँ तक मेरी नज़र जाती है , ऐसी कोई भी प्रक्रिया हिन्दू को "आन्दोलित" नहीं कर सकेगी। संगठनों पर भरोसा करना अब उसके लिए संभव ही न रहा। वह तो चुपचाप उस दिन की प्रतीक्षा में है जिस दिन उदय होगा एक ऐसे नेतृत्व का जिसमें वह पायेगा वही "प्रखरता" जिसकी आशा उसे है और साथ ही वैसी ही "पारदर्शिता" जिसकी आवश्यकता उसे है। उस दिन वह निकल पड़ेगा अपने घरों से, न होगी उसे अपनी परवाह, होगी अगर कुछ उसकी चाहत में तो वह होगा "धर्म की पुर्नस्थापना"। इस बार धर्म और अधर्म के बीच युद्ध संगठित शक्तियों के बीच नहीं बल्कि संगठन और "जनशक्ति" के बीच होगा।

कुछ लोग बहुत अधीर होते हैं , उन्हें हर चीज की जल्दी रहती है। उन्हें लगता है कि जो उनके अपने जी वनकाल में न हो पायेगा वह होगा ही नहीं। वे अपनी छोटी- सी जीवन की अवधि को "समय" के साथ तौलने बैठ जाते हैं। वे नहीं समझते कि "समय" उस "असीमित" कैलेन्डर का नाम है जो इस "काल-चक्र" की गति को दर्शाता है। जबकि, ये अधोबुद्धि मानव उस कैलेन्डर पर अपनी नज़र गड़ाये बैठे रहते हैं जो उनके जैसे साधारण मानव लिखते हैं।

कुछ लोग मुसलमानों की बातें करते हैं और कहते हैं देखो वे कितने संगठित हैं कि एक आवाज़ पर सब-के-सब राह पर निकल पड़ते हैं। ऐसे लोग यह नहीं समझते कि इस्लाम का जन्म ही एक राजनैतिक एवं

"साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा" को लेकर हुआ था, धर्म तो केवल मुखौटा था, अल्लाह के नाम पर एकजुट करने एवं अन्य संस्कृतियों का विनाश करने के लिए। मुसलमानों के संगठन की दाद देने वाले लोग क्या हिन्दुओं से भी यही आशा करते है ? क्या वे चाहते हैं कि हिन्दू का भी वैसा ही नैतिक पतन हो और हिन्दू धर्म भी साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा को प्रश्रय देने के लिए एक मुखौटा मात्र बन कर रह जाये?

यही लोग जो मुसलमानों के संगठित होने की बड़ाई करते हुए एवं इस दृष्टि से हिन्दू को हीन बताते हुए , हिन्दू के मनोबल को सतत तोड़ते रहने में अपना बड़प्पन एवं बुद्धिमानी मानते हैं, वे इस्लाम के संबंध में एक और अहं बात भूल जाते हैं। कुरआन बड़े ही स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा करता है (पढ़ें उठो अर्जुन 3) कि जब एक विषय पर अल्लाह एवं उसके पैगंबर दोनों सहमत हैं तब किसी भी मुसलमान मर्द या औरत को यह अधिकार नहीं कि वह उसके विरुद्ध कुछ भी बोले या करे। क्या वे विद्वान जो मुसलमानों में संगठन की बड़ाई करते हैं वे यही चाहते हैं कि हिन्दू भी वैसा ही करे ? यही हाँ, तब उन्हें तैयार रहना होगा अपनी जुबान पर ताला लगाने के लिए या फिर इस्लाम की तरह उसे कटवा देने के लिए, उनकी वही जुबान जो जरूरत से ज्यादा चलती है और अपनी नासमझी को समझी का जामा पहनाती है।

वे अति बुद्धिमान जो मुसलमानों में संगठन की बड़ाई और हिन्दू में इसकी कमी पर बारंबार बोलते नहीं थकते , वे अपने-आप से यह क्यों नहीं पूछते कि यदि मुसलमानों में "वास्तव" में इतनी एकजुटता है तो फिर एक मुसलमान एम-जे अकबर के अंग्रेज़ी अखबार "एशियन एज" की सहायता से मलेशिया के मुसलमान प्रधानमंत्री डॉ. महाथिर बिन मुहम्मद को इस बात की गुहार लगानी पड़ी कि वे मुसलमानों से अपील करते कि

(पढ़ें उठो अर्जुन 3) वे आपसी झगड़ों को भूल कर "एक जुट बनें"? यही लोग अपने-आपसे एक और प्रश्न पूछें कि मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान में आये दिन सिया सुन्नी एक दूसरे का कत्ले आम क्यों करते हैं (पढ़ें Seed 4)? वे अपने-आपसे यह क्यों नहीं पूछते कि विश्व के सबसे कट्टर मुस्लिम राष्ट्र सऊदी अरब में मुसलमानों के एक पंथ ने दूसरे पंथ के महत्वपूर्ण मस्जिद को बुलडोज़र लाकर (पढ़ें उठो अर्जुन 1) क्यों ढहा दिया? क्या ऐसे विद्वान इसी "एकता" की दाद देते हैं?

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

संभवतः विश्व की सबसे बड़ी गैर-सरकारी संगठन है, आर-एस-एस, सदस्य संख्या की दृष्टि से। फिर भी ऐसा क्यों है कि इस हिंदू-बहुल राष्ट्र की बागडोर हिंदू-द्वेषियों के हाथ में है और हिंदू अपने-आपको असहाय-सा पाता है? ऐसा क्यों, कि हिंदू जनसमुदाय को कभी ऐसा नहीं लगता कि हमारे हितों की रक्षा करने वाला भी कोई है? ऐसा क्यों, कि हिंदू जनसमुदाय अपनी बाहें फैलाकर आर-एस-एस को अपने हृदय से लगाने को लालायित नहीं होता? इस संदर्भ में गांधी-हत्या का बहाना न दें, यह किस्सा बहुत पुराना हो चुका है।

ऐसा क्यों, कि सदा दोष हिंदू के मत्थे ही मढ़ा जाता है, इस बहाने कि हिंदू बँटा हुआ है, हिंदू वोट-बैंक बँटा हुआ है? आर-एस-एस समर्थित अटल बिहारी बाजपई की सरकार की हार के पश्चात, आर-एस-एस के एक बहुत ही उच्चस्तरीय एवं जाने-माने व्यक्तित्व से मेरी बात हो रही थी, तब ये दलीलें सामने आयीं। जो ऐसा कहते हैं क्या वे हिंदू की मूलभूत आवश्यकता को समझते हैं? क्या उन्हें हिंदू के नस की पहचान है? क्या उनकी समझ सतही नहीं है? क्या कभी उन्होंने हिंदू को नेतृत्व प्रदान करने की "अपनी योग्यता" पर प्रश्न-चिह्न लगाया?

कुछ-ही महीनों पहले अजमेर की जनसभा में दिए गए श्री के-एस सुदर्शन के वक्तव्य की ओर चलें। उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद को भगवान श्रीकृष्ण के साथ एक-ही तराज़ू में तौला और उन्हें एक-दूसरे के समकक्ष बताया। पैगंबर मुहम्मद जिसने मुसलमानों को हिंदुओं का सरे-आम कत्ल करने की हिदायत कुरआन में दी और भगवान श्रीकृष्ण जिन्होंने अधर्म के विनाश की बात श्रीमद्भगवद्गीता में कही - दोनों को समकक्ष घोषित किया! यह उनका अज्ञान बोल रहा था या फिर मुसलमानों की चापलूसी? यदि वह अज्ञान था तो उसे लाखों स्वयंसेवकों में फैलाने का अधिकार उन्हें किसने दिया? ऐसा व्यक्ति जिस संगठन के शिखर पर बैठा हो क्या उसे एक हिंदू संगठन की संज्ञा दी जा सकती है? यदि यह अज्ञान नहीं था बल्कि मुसलमानों की चापलूसी थी तो ऐसा व्यक्ति, जिस संगठन का सर्वोच्च पदाधिकारी हो, क्या वह संगठन एक हिंदू संगठन होने का दम भर सकता है?

आर-एस-एस के मध्य-उच्च स्तरों पर विराजमान व्यक्तियों से समय-समय पर मैंने कुछ ऐसा सुना था कि आर-एस-एस में निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं। क्या आर-एस-एस में इस बात पर सहमति है कि पैगंबर मुहम्मद एवं भगवान श्रीकृष्ण दोनों समकक्ष हैं? क्या आर-एस-एस में सहमति है कि मुसलमानों की चापलूसी करना ही हिंदुओं के लिए उचित है?

आर-एस-एस का निम्न-मध्यम वर्ग इतना दूषित नहीं है। उस स्तर पर अनेक व्यक्ति हिंदू धर्म के प्रति कहीं अधिक ईमानदार हैं। श्री पी दैवमुथु हैं जो हिंदू वॉइस नाम की मासिक पत्रिका चलाते रहे हैं अनेक आर्थिक कठिनाइयों के बावज़ूद। पर आर-एस-एस ने अपना हाथ बढ़ाकर उनकी सहायता नहीं की। दैवमुथु पहले "हिंदू हैं" और "उसके बाद" आर-एस-एस

के कार्यकर्ता। उनके अबतक के कार्यकलाप, हिंदू-हित के प्रति उनकी जागरूकता को दर्शाती रही है। उन्होंने श्री के-एस सुदर्शन के अजमेर भाषण के संदर्भित हिस्से को छापा, एवं आर-एस-एस के उन मुट्ठीभर व्यक्तियों के मत को भी छापा जिन्होंने के-एस-सुदर्शन की अजमेर जनसभा में की गई घोषणा को आपत्तिजनक माना।

वे लोग आर-एस-एस से जुड़ते है जिनमें हिन्दू भावना की अधिकता होती है। जब वे ऊपर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगते हैं तब उनमें एक अन्य योग्यता की भी परख की जाती है। वही योग्यता इस बात का निर्णय करती है कि वह व्यक्ति कितनी ऊँचाई तक पहुँ च पायेगा। संगठनों की यह एक अजीब विवशता होती है। मैं संगठनों का अंग बनना पसन्द नहीं करता। मेरे लिए मुखौटा पहनना संभव नहीं।

आर्य समाज तथा आर-एस-एस के लोगों में "अध्यात्मिक बल" का सर्वथा अभाव रहा है। यही मूल कारण है कि वे कुछ भी ऐसा , न कर गुजर पाये, जो राष्ट्र के तथाकथित "स्वतंत्र" बन जाने के बावज़ूद "हिन्दू हितों" की दिशा में "निर्णायक" कदम होता।

22 सितम्बर 2008

आर्यसमाजियों के मन में एक बड़ी भांति घर कर गई है। वह यह कि ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान केवल आर्यसमाज को ही है। वे अपने तर्कों में इतना खोये रहते हैं कि उन्हें इस बात का भान तक नहीं होता कि ईश्वर पोथियों में नहीं बसता।

दूसरी तरफ आर-एस-एस के लोगों की विडम्बना यह है कि उन्हें राष्ट्र ही सर्वोपरी लगता है। वह राष्ट्र जो अनित्य है , जिसकी रूपरेखा समय के साथ बदलती रहती है ठीक उसी प्रकार जैसे इस संसार का प्रत्येक अन्य

वस्तु भी परिवर्तनशील है। वह राष्ट्र जो एक भौगोलिक परिधि मात्र है , वह राष्ट्र जिसकी सीमायें बदलती रहती हैं , वह राष्ट्र जिसमें बसने वाले लोग बदलते रहते हैं, वह राष्ट्र जिसमें बसने वालों की निष्ठायें बदलती रहती हैं। वह राष्ट्र जिसे वे भारतमाता कहते हैं , यह भुलाकर कि भारतमाता केवल एक छोटा- सा अंग है उस विशाल धरतीमाता का जिसपर मानवता पलती है, या फिर बलात्कारित होती है। वे उस राष्ट्र की बात करते हैं जहाँ हिन्दू बसते थे जिन्होंने शरणार्थी सीरियन ईसाइयों को पनाह दी (दक्षिण), जिन्होंने मुसलमान व्यापारियों, पर्यटकों को रहने को स्थान दिया (गुजरात) और उन्हें मस्जिद बना कर अल्लाह की इबादत करने दिया। वे उस राष्ट्र की बात करते हैं जहाँ के उन्हीं शरणार्थी सीरियन ईसाइयों ने धैर्य धर एक हजार वर्ष बिताये हिन्दुओं के आतिथ्य के सहारे और जब वास्को- डा-गामा आया तो उसके पास जाकर अपनी निष्ठा व्यक्त कर उसे अपने शरणदाता हिन्दू राजा के विरुद्ध युद्ध का आमन्त्रण दिया (अंग्रेजी में सीड-5 पढ़ें)। वह राष्ट्र जहाँ हिन्दू आतिथ्य के सहारे बसने वाले मुसलमान इस सपने के सहारे जीते रहे कि कब यह दार-उल-हर्ब (गैर मुसलमानों का राष्ट्र) दार-उल-इस्लाम (मुसलमानों का राष्ट्र) बनेगा और फिर एक दिन आया जब उलुघ खान ने उसी गुजरात को दार-उल-इस्लाम बना दिया। पनाह देने वाला जब अपने पीठ पर वार खाता है तो उसे कोई विशेष आनन्द नहीं होता। यह केवल इतिहास मात्र नहीं, वर्तमान भी है। उत्तर-पूर्वी भारत में ईसाई राष्ट्रों की परिकल्पना चल रही है, नागालैण्ड काफ़ी समय से यह माँग कर रहा है। झारखण्ड के निवासी ही केवल जानते हैं कि वहाँ क्या चल रहा है , कारण हमारे बड़े समाचार एजेन्सियाँ जिनकी बागडोर विदेशी चर्चों के हाथ में है (अंग्रेजी में ऐराइज़ अर्जुन सीड-2 पढ़ें) ये बातें भारत की आम जनता तक पहुँचने ही नहीं देती। ये राष्ट्र- राष्ट्र रटने वाले भूल जाते हैं कि इस सतत

परिवर्तनशील (अनित्य) राष्ट्र के ऊपर है अपरिवर्तनशील (नित्य) ईश्वर जिसके प्रति निष्ठा यदि उनकी होती सर्वोपरि तो वे बहुत कुछ कर गुजरते अबतक। खैर उनके पास जो नहीं है उसकी आशा करना भी वृथा है। समस्या उनके वर्तमान में नहीं बल्कि उनकी उत्पत्ति में है। वह जड़ जहाँ से उत्पत्ति हुई आर-एस-एस की उसके बारे में विशद रूप से किसी अगली पुस्तक में गहराई से चर्चा करेंगे (अथवा अंग्रेजी में सीड 7 पढ़ें)।

संदर्भ सूची

ISBN 978-81-89990-15-2 Maanoj Rakhit, Seed 2

ISBN 978-81-89990-15-2 Maanoj Rakhit, Seed 4

उठो अर्जुन 1 से 10 तक, मानोज रखित

The Christian Intelligence, Calcutta, March 1870, p 79 and AFRH quoted in The Arya Samaj by Lala Lajpat Rai, 1932, p 42 quoted in Western Indologists A Study in Motives.htm, Purohit Bhagavan Dutt

ISBN 81-85990-52-2 [1998] Dr N S Rajaram, A Hindu View of the World - Essays in the intellectual Kshatriya Tradition

"अंधकार का प्रकाश" पंडित महेन्द्र पाल आर्य

ISBN 978-019-564819-5 [2007] Oxford English-Hindi Dictionary अंग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश

http://www.indialife.com/Religions/sikhism1.htm

सर्वोच्च न्यायालय एवं बंबई , कलकत्ता, मद्रास के उच्च न्यायालयों में दायर किए गए मुकदमों के संदर्भ

Supreme Court Of India, Judgement Information System, Appeal (civil) 9595 of 2003, Date of judgement 21/08/2006

Supreme Court Of India, Judgement Information System, Appeal (civil) 4730 of 1999, Date of judgement 08/08/2005

(http://judis.nic.in/supremecourt/qrydisp.asp?tfnm=27098 entries as of 6-7-07)

Madras High Court (1993) 1 MLJ 140

Calcutta High Court AIR 1968 Calcutta 74

AIR 1958 SC 956

AIR 1954 SC 282

Bombay High Court AIR 1939 Bombay 377

Madras High Court AIR 1927 Madras 22

Source: http://en.wikipedia.org/wiki/Legal_status_of_Jainism_as_a_distinct_religion_in_India entries as of 23 June 2007

संदर्भ तथा टिप्पणियाँ

[1] kamat.com Yahoo Image Search 2009-08-28 2100

[2] http://en.wikipedia.org/wiki/Swami_Dayananda_Saraswati 2009-08-28

[3] http://www.imagesofasia.com/html/india/queens-college.html 2009-08-28

[4] http://cgi.ebay.co.uk/BENARES---The-Queens-College---old-India-postcard_2008-08-28 2043

[5] स्रोत The Christian Intelligence, Calcutta, March 1870, p79 ध्यान दें Intelligence का अर्थ केवल बुद्धि या समझने की शक्ति ही नहीं होती बल्कि (गुप्त) समाचार भी जो यहाँ प्रयोज्य है The Christian Intelligence अर्थात ईसाई (अथवा ईसियों के लिए) (गुप्त) समाचार 2009-08-28 2030

[6] Seed 2 ISBN 978-81-89990-15-2)

[7] Seed 2 ISBN 978-81-89990-15-2)

[8] ब्रह्मसमाज, निराकार ब्रह्म के उपासक, जो अपने-आपको हिंदू समाज से अलग समझते - उसीप्रकार आर्यसमाज भी अपनेआपको हिंदू समाज से अलग समझता

[9] http://en.wikipedia.org/wiki/Ram_Mohan_Roy 2009-08-28 2112

[10] http://en.wikipedia.org/wiki/Keshub_Chunder_Sen 2009-08-28 2108

[11] http://en.wikipedia.org/wiki/Ramakrishna 2009-08-28 2137

[12] http://en.wikipedia.org/wiki/Ramakrishna 2009-08-28 2225

[13] "अंधकार का प्रकाश" पंडित महेन्द्र पाल आर्य

[14] "अंधकार का प्रकाश" पंडित महेन्द्र पाल आर्य

[15] (http://judis.nic.in/supremecourt/qrydisp.asp?tfnm=27098 document seen on 6 July 2007) तथा (http://en.wikipedia.org/wiki/Legal_status_of_Jainism_as_a_distinct_religion_in_India#_note-1 entry seen on 6 July 07) Supreme Court Of India, Judgement Information System, Appeal (civil) 4730 of 1999, Date of judgement 08/08/2005

[16] http://www.indialife.com/Religions/sikhism1.htm

[17] "In philosophical sense, Jainism is a reformist movement amongst Hindus like Brahamsamajis, Aryasamajis and Lingayats [See : 1) Encyclopedia of Religion and Ethics Vol. 7 pg. 465; 2) History of Jains by A. K. Roy pgs. 5 to 23; and Vinoba Sahitya Vol. 7 pg. 271 to 284]" Supreme Court Of India, Judgement Information System, Appeal (civil) 4730 of 1999, Date of judgement 08/08/2005 (http://judis.nic.in/supremecourt/qrydisp.asp?tfnm=27098 document seen on 6 July 2007)